लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय

लोक' शब्द संस्कृत के 'लोकदर्शने' धातु में 'घ' प्रत्यय लगाकर बना है, जिसका अर्थ है-देखने वाला। साधारण जनता के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर हुआ है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में, "लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, जिसमें भूत, भविष्य और वर्तमान संचित हैं। अर्वाचीन मानव के लिये लोक सर्वोच्च प्रजापति है।"

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम से न लेकर नगरों व गाँवों में फैली उस समूची जनता से लिया है जो परिष्कृत, रुचिसंपन्न तथा संस्कृति समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन की अभ्यस्त होती है।

डॉ० कुंजबिहारी दास ने लोकगीतों की परिभाषा देते हुए कहा है, "लोकसंगीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है, जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर कम या अधिक आदिम अवस्था में निवास करते हैं। यह साहित्य प्रायः मौखिक होता है और परम्परागत रूप से चला आ रहा है।"

लोकगीतों को मात्र ग्रामगीत कहकर उनकी व्यापकता को कम नहीं किया जा सकता। ये गीत अब गाँव की चहारदीवारी को छोड़ नगरों और महानगरों की सीमा को छू रहे हैं। हिन्दी साहित्य कोश में 'लोकगीत' शब्द के तीन अर्थ किये गये हैं १. लोक में प्रचलित गीत, २. लोकनिर्मित गीत तथा ३. लोकविषयक गीत। किन्तु वास्तव में लोकगीत का तात्पर्य लोक में प्रचलित गीत ही है, जिसे दो अर्थ दिये जा सकते हैं-१. अवसरविशेष के प्रचलित गीत तथा २. परम्परागत गीत।। लोक द्वारा निर्मित होने पर भी लोकगीत को किसी व्यक्ति विशेष से जोड़ा नहीं जा सकता, क्योंकि रचनाकार को उस गीत में समस्त लोक के व्यक्तित्व को उभारना होता है। लोक साहित्य वस्तुत: जनता का वह साहित्य है जो जनता द्वारा, जनता के

लिये लिखा जाता है।

"The poetry of the people, by the people, for the people."

अंग्रेजी में 'फोक' का अर्थ है- लोक, राष्ट्र, जाति, सर्वसाधारण या वर्गविशेष ।

इसीलिए Folk Song के अनुरूप हिन्दी में लोकसंज्ञा दी गई है। अंग्रेजी का Folk Song जर्मनी के Volkslied का अपभ्रंश है। समस्त मानव-समाज में चेतन-अचेतन रूप में जो भावनाएँ गीतबद्ध हुई हैं, उन्हें लोकगीत कहा जा सकता है। डॉ. बार्क ने 'फोक' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि इससे सभ्यता से दूर रहने वाली पूरी जाति का बोध होता है। ग्रिम का कथन है कि लोकगीत अपने आप बनते हैं-

"A folk song composes itself." Grimm

पेरी ने लिखा है कि लोकगीत आदिमानव का उल्लासमय संगीत है।

"The primitive spontaneous music has been called folk music."- Perey

राल्फ वी० विलियम्स का कथन है कि "लोकगीत न पुराना होता है न नया। वह तो जंगल के एक वृक्ष जैसा है, जिसकी जड़ें तो दूर जमीन में फंसी हुई हैं, परन्तु जिनमें निरन्तर नई-नई डालियाँ, पल्लव और फल लगते हैं।"

"A Folk Song is neither new nor old, it is like a forest tree with its roots deeply burried in the past, but which continually puts forth new branches, new leaves, new fruits.

लोकगीत हमारे जीवन- विकास को गाथा हैं। उनमें जीवन के सुख-दुःख, मिलन विरह, उतार-चढ़ाव की भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। सामाजिक रीति एवं कुरीतियों के भाव इन लोकगीतों में हैं। इनमें जीवन की सरल अनुभूतियों एवं भावों की गहराई है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी का कहना है कि लोकगीत का मूल जातीय संगीत में है। लोकगीतों का विस्तार कहाँ तक है, इसे कोई नहीं बता सकता। किन्तु इनमें सदियों से चले आ रहे धार्मिक विश्वास एवं परम्पराएँ जीवित हैं। ये हृदय की गहराइयों से जन्से हैं। श्रुतिपरम्परा से ये अपने विकास का मार्ग बनाते रहे हैं। अत: इनमें तर्क कम, भावना अधिक है। न इनमें छन्दशास्त्र की लौह श्रृंखला है, न अलंकारों की बोझिलता। इनमें तो लोकमानस का स्वच्छ और पावन गंगा-यमुना जैसा प्रवाह है। लोकगीतों का सबसे बड़ा गुण यह है कि इनमें सहज स्वाभाविकता एवं सरलता है। इनमें सुख-दुःख, प्रेम और करुणा के विविध रंग हैं। कहीं पुत्रजन्म के अवसर पर हर्ष उल्लास के स्वर गूंजते हैं, तो कहीं कन्या की विदाई या प्रियवियोग की बेला में करुणा के गीत मुखर होते हैं।

लोकगीतों में भावों की अभिव्यक्ति स्वाभाविक और हृदय से निकली हुई लय के साथ होती है। हरे जंगलों में जैसे पंछी उन्मुक्त होकर गाते हैं, उसी प्रकार लोकगीत स्वाभाविक रीति से हृदय से फूटकर निकलते हैं। इनमें सरल काव्य होता है, भावों की खींचतान नहीं होती।

लोकगीतों में लोक का समस्त जीवन चित्रित है। शिशु के प्रथम क्रन्दन से लेकर जीवन की अन्तिम कड़ी तक के भावचित्र इनमें हैं। भाई से मिलने को व्याकुल बहन की व्यथा-कथा, स्त्रियों का आभूषण-प्रेम, सास, ननद तथा सौत के अत्याचारों से पीड़ित स्त्री की मनोव्यथा, कृषक परिवार की विपत्ति, वीरों की शौर्यगाथा तथा मिलन-विरह के रंगारंग भाव इन गीतों में मिलते हैं। दूसरे शब्दों में, इन लोकगीतों में जीवन का शाश्वत सत्य झलकता है।

मौखिक परम्परा से विकसित होते हुए इन लोकगीतों को वेदों के समान माना गया है, क्योंकि दोनों ही अधिक मात्रा में श्रव्य हैं। लोकगीतों की शैली सहज होती है और उनमें गेय तत्वों की प्रधानता होती है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार- कोई भी गीत, कैसा भी संगीत लोक संगीत पर निर्भर है। संगीत की दृष्टि से ये गीत बिना किसी वाद्य यंत्र के स्वाभाविक हृदयस्पर्शी स्वर का प्रतिनिधित्व करते हैं।

डॉ० यदुनाथ सरकार ने लोकगीत की विशेषताएँ बतलाते हुए कहा है, "प्रबन्ध की द्रुतगति, शब्द विन्यास की सादगी, विश्वव्यापी मर्मस्पर्शी प्राकृतिक मनोव्यथा, सूक्ष्म किन्तु प्रभावोत्पादक चरित्र-चित्रण, क्रीड़ास्थली एवं देशकाल का स्थूल अंकन, साहित्यिक कृत्रिमताओं के न्यूनातिन्यून प्रयोग का सर्वथा बहिष्कार सच्चे लोकगीत की ये नितान्त आवश्यकताएँ हैं।"

महादेवी वर्मा के शब्दों में, "सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्थाविशेष को गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है और इस गीत में जब सहज चेतना जुड़ जाती है, तो वह लोकगीत बन जाता है।

"लोकगीत कवि के परोक्षानुभूतिपरक दृष्टिकोण से सहज रूप में उद्‌भूत संगीतात्मक शब्दयोजना को कहा जा सकता है। मानव-जाति की अनवरत साधना से संजात यह अपौरुषेय साहित्य अपने आपको प्राचीनतम स्मृति साहित्य के समकक्ष ही गुरुता का अधिकारी बनाये हुए है अथवा दूसरे शब्दों में, श्रुति साहित्य की भाषापरम्परा में यह सबसे प्रामाणिक भाष्य है।"

लोकगीतों के प्रकार

लोक-संगीत के अंतर्गत लोकगीत एवं लोकगाथा हैं, किन्तु इनमें स्वरूपगत एवं विषयगत भेद हैं। लोकगीत आकार में छोटा होता है, जबकि लोकगाथा का आकार विस्तृत होता है। आल्हाखण्ड, राजस्थान का ढोला मारू, उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिले की सोरठी तथा अंग्रेजी की 'द जेस्ट ऑफ रॉबिनहुड' नामक गाथा बड़ी लम्बी है। विषय की दृष्टि से लोकगीतों में विभिन्न संस्कारों, ऋतुओं एवं दैनिक अनुभूतियों के चित्र मिलते हैं, जबकि लोकगाथाओं में प्रेम कथाएँ तथा वीरगाथाएँ होती हैं। निस्सन्देह लोक साहित्य में लोकगीतों की प्रमुखता है। जनजीवन में इनकी व्यापकता एवं प्रचुरता के कारण इनका प्राधान्य उचित है। इनकी कोटियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है (क) संस्कारों की दृष्टि से (ख) रस की दृष्टि से (ग) ऋतुओं और व्रतों के अनुसार (घ) जाति के आधार पर (ङ) श्रम के आधार पर

इनके अलावा झूमर, पूर्वी, देवीगीत, खेलगीत, देशभक्तिपरक गीत, भजन, लोरी, नृत्य गीत आदि विविध गीतों में आते हैं।

संस्कार गीत

शांकरभाष्य, वेदान्त सूत्र में संस्कार की परिभाषा करते हुए कहा गया है--संस्कारो हि नाम गुणाधानेन वा स्याद् दोषापनयनेन वा' अर्थात् दोषों के अपनयन एवं गुणों के आधान को संस्कार कहते हैं। 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु में 'घञ् प्रत्यय लगाकर (सम् + कृ + घञ्) संस्कार' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है-- संस्कार वह है, जिसके होने से कोई भी योग्यता होती है। वस्तुतः संस्कार भारतीय जीवन की नींव है। शरीर में प्राकृत भावों को हटाकर उनके स्थान में अच्छे भावों का आधान कराना ही संस्कार है। यह संस्कार शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक होता है, जो शरीर और मन--दोनों को पवित्र करता है। मनुष्य इन संस्कारों के द्वारा ही जन्मजात शूद्रत्व एवं पशुत्व छोड़कर शिष्ट मनुष्यत्व को प्राप्त करता है। वैदिक साहित्य में इन संस्कारों का विशद विवेचन है। मनु, याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियों में संस्कारों का विस्तृत विवरण एवं उनका सामाजिक महत्त्व बताया गया है। सूरसागर में निम्न सोलह संस्कारों का उल्लेख है--गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णविध, उपनयन, वेदारंभ, समावर्तन, विवाह, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास। हमारे समक्ष संस्कारों के दो पक्ष हैं-शास्त्रीय पक्ष एवं लोकपक्ष। शास्त्रीयपक्ष के कई विधान अब लुप्त हो गये हैं तथा गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोत्रयन संस्कार अब नहीं होते। जातकर्म, अन्नप्राशन एवं निष्क्रमण थोडे-बहुत भेद के बाद संपन्न होते हैं। चूडाकर्म या मुण्डन प्रथम, तृतीय या पंचम वर्ष में कभी अलग से और कभी उपनयन के साथ संपन्न किया जाता है। गोदान एवं केशान्त का विधान भी अब आज के संयुक्त परिवार के साथ ही लुप्त हो रहा है।

इन संस्कारों का लोकपक्ष शास्त्रीयपक्ष की ही भाँति महत्वपूर्ण है। शास्त्रीयपक्ष के अनुसार जहाँ पुरोहित द्वारा संस्कार संपन्न कराया जाता है, वहीं लोकपक्ष में ये संस्कार स्त्रियों द्वारा संपन्न किये जाते हैं। धर्मशास्त्रों में यद्यपि षोडश संस्कारों का वर्णन आया है

किन्तु इनमें से तीन संस्कारों को ही प्रमुख माना गया है—जन्म, विवाह तथा मृत्यु।

अनुष्ठान की दृष्टि से यद्यपि मृत्यु-संस्कार का बहुत महत्व है, किन्तु इस संस्कार में शोक का भाव प्रबल होता है, इसलिये गृह्यसूत्र, धर्मशास्त्र और स्मृतिग्रन्थों में इस संस्कार की चर्चा नहीं है। वेदों में मृत्युसंबंधी ऋचाएँ मिलती हैं। मृत्युसंबंधी लोकगीत नहीं मिलते। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में निर्गुण पदों को लिया जा सकता है।

हिन्दुओं का सामाजिक जीवन प्रारंभ से संगीतमय रहा है। उनके प्रत्येक मंगलकार्य में संगीत का प्रमुख स्थान है। जन्म और विवाह-- ये दो संस्कार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन अवसरों पर लोकमानस सुख और आनन्द से परिपूर्ण रहता है। इस समय गाये जाने वाले गीत मंगलगीत कहलाते हैं। जन्मसंबंधी संस्कारों के अन्तर्गत छठी, नामकरण, चूड़ाकरण, अन्नप्राशन, बरही, मुण्डन आदि संस्कार आते हैं। विवाह संस्कार में कई प्रकार की विधियाँ होती हैं।

रसगीत

लोकगीत भले ही श्रुति परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हों, किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि इनमें भाषा, भाव की समृद्धि किसी अन्य साहित्य से कम नहीं है। इनमें अलंकारों और रसों का सुन्दर समन्वय देखा जा सकता है। श्रृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का सुन्दर चित्रण इनमें मिलता है। संयोग श्रृंगार के एक चित्र में प्रेम की पराकाष्ठा देखें--

*होइतों मैं जल की मछरिया,

जलहि बीचे रहि जइतों हो राम।

अहो रामा मोरा हरि अइतें असननवा

चरन चूमि लेइतीं हो राम।*

झूमर आदि गीतों में श्रृंगार रस का सुन्दर उदाहरण मिलता है--

कुसुम रंग चुनरी रँगा द पियवा हो।

चुनरी रँगा द, अँगिया सिया द,

कोरे कोरे गोटवा लगा द पियवा हो ।

पति के विदेश जाने पर एक स्त्री लौंग की लता को संबोधित करके कहती है--

*जौ मैं जनतेउँ लवँगरि एतना महकबिउ,

लवँगरि रँगतेउ छयलवा क पाग

सहरवा में गमकत।*

बरसात के दिनों में वन में रह रहे पुत्रों और पुत्रव के लिए कौशल्या का स्नेह छलक पड़ रहा है--

रिमझिम रिमझिम दैव बरीसैं, पवन चलै पुरवाई,

कौन बिरिछ तरे भींजत होइहें, राम लखन दूनो भाई।

लोकगीतों में हास्यरस का भी पुट मिलता है। एक बूढी सास के लिये किसी बहू की उक्ति है--

बूढ़ी बड़ी जहर के कूड़ा,

बाइस रोटी झटकै खायँ।

लोकगीतों के अन्तर्गत भक्ति भावना के पदों की भरमार है। निर्गुण पदों के अतिरिक्त राम, कृष्ण, शिव एवं देवी भगवती के स्वरूप और उनकी लीलाओं का भी चित्रण इन गीतों में पाया जाता है-

प्रात समय कौशिल्या रानी

अपनो लाल जगावे।

ऋतुओं एवं व्रतों के गीत

भारत ऋतुप्रधान देश है। यहाँ हर ऋतु का अपना सौन्दर्य एवं महत्त्व है। इन ऋतुओं ने हर काल में कवियों को प्रभावित किया है। चाहे ग्रीष्म में फूले पलाश हों, चाहे वर्षा की सोंधी सुगंध हो, शरद की गुलाबी रातों का निर्मल आकाश हो या प्रेमियों का प्यारा ऋतुराज वसन्त हो-- कवि की कल्पना हर ऋतु पर नया वेश बदलती रही है। इन ऋतु-गीतों में प्रकृति-सौन्दर्य के अतिरिक्त पारिवारिक प्रेम, सामाजिक जीवन एवं धार्मिक विश्वास आदि लोकजीवन के भी चित्र मिलते हैं।

ग्रीष्म ऋतु में जब शरीर से टप-टप कर पसीना चूता है, कोई स्त्री सींक की झाड़ू से आँगन बुहार रही है। पति आकर देखता है, तो रूमाल से उसका पसीना पोंछने लगता है। सास इस पर बहू को ताना मारती है--

अँगना बहारत छिटकी गरमिया

प मथवन चूवै रे पसिनवाँ ।

द्वारे से आये पिया पतरंगवा

प पोछै लागै अपनी रूमलिया ।

व्रत और त्योहार भारत के सांस्कृतिक इतिहास के सुनहले पृष्ठ हैं, जिनका अनुष्ठान पीढ़ी-दर-पीढ़ी होता रहता है। ग्रीष्मकाल में अक्षय तृतीया, वैशाखी पूर्णिमा, वट सावित्री आदि व्रत होते हैं, तो पावस में मधुश्रावणी, तीज, नागपंचमी, कजली तीज, जन्माष्टमी, हरतालिका तीज, गणेश चौथ, ऋषिपंचमी व्रत, कर्म-धर्म, अनन्त चतुर्दशी आदि का महत्व है। शरद ऋतु तो व्रतों और त्योहारों की ही ऋतु है। नवरात्र, सौझी, करवा चौथ, दीपावली, गोवर्धन पूजा, चिड़िया, भाईदूज, छठ, कार्तिक पूर्णिमा आदि का महत्व सर्वविदित है। हेमन्त और शिशिर ऋतु में नवान्न वत के अतिरिक्त माघी अमा और मकर संक्रान्ति आदि का समय होता है। वसन्त ऋतु में वसन्त पंचमी, माघ पूर्णिमा, शिवरात्रि, होली, शीतला अष्टमी. चैत्र संक्रान्ति, चैती नवरात्र, गणगौर, रामनवमी, महावीर जयन्ती, वैसाखी, सरहुल, बीहू-पर्व आदि मनाये जाते हैं।

जातिपरक गीत

इस तरह के गीतों में अहीरों का 'बिरहा' अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। दुसाधों में जब कोई व्यक्ति प्रेतबाधा से पीड़ित होता है, तो 'पचरा' गाकर देवी का जातिपरक गीत आवाहन किया जाता है। गोंड़ जाति के गीतों को 'कहरवा' और तेलियों के गीतों को 'कोल्हू के गीत' कहते हैं।

श्रम गीत

कोई काम करते समय थकावट मिटाने के लिये गाये जाने वाले गीतों में जंतसार, रोपनी, सोहनी आदि हैं, जिन्हें श्रमगीत कहते हैं। पैदल यात्री गीत गाकर अपनी थकान मिटाते हैं, तो पालकी ढोने वाले कहार गीत गाकर मार्ग तय करते हैं। खेतिहर मजदूर गीत गाकर अपनी थकान मिटाते हैं तो चरवाहों के गीतों से जंगल सरस हो उठता है। लोकगीतों और गाथाओं में स्थानीयता का पुट विशेष रूप से पाया जाता है। जिस जनपद में जो गीत प्रचलित हैं, उनमें वहाँ के लोगों का रहन-सहन, रीति-रिवाज, आचार व्यवहार सजीव रूप में चित्रित रहता है। लोक-संस्कृति इन गीतों में अपने पूर्ण वैभव के साथ प्रतिबिम्बित होती है। राजस्थान की लोकगाथाओं में वहाँ के बलिदानी वीरों की गाथा तथा क्षत्राणियों के मान-अभिमान का चित्रण है। बिहार की लोक-कथाओं में वीर कुँवरसिंह का नाम आता है। मैथिली लोकगीतों में मिथिला की सामाजिक प्रथाएँ चित्रित हैं। इसी तरह, अन्य सभी प्रान्तों के गीतों में वहाँ की परम्पराओं का स्पष्ट चित्रण मिलता है।